International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 6.959 Volume 9, Issue 3, March 2022
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

हिन्दी साहित्य और प्रेमचंद्र की विचार धारा

ललित कुमार श्रीवास्तव[1], डॉ. ललिता कुमारी[2]

[1]अध्येता, हिंदी विभाग, RKDF, राँची (झारखण्ड) – भारत

[2]एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, RKDF, राँची (झारखण्ड) – भारत

सार

प्रेमचंद्र हिंदी के अपने ढंग के एक ही उपन्यासकार हुए हैं। जब उर्दू के उपन्यासों का बोलबाला था और लोग हिंदी के उपन्यासों को पढ़ते–पढ़ाते नहीं थे, उस समय जिन लेखकों ने हिंदी में उपन्यास लिखकर हिंदी की श्रीवृद्धि की, उनमें प्रेमचंद्र का नाम सर्वोपरि आता है। उन्होंने अपने साहित्य सृजन की कालवधि में काफी पढ़ा, जीवन–संघर्षो से नाना अनुभव प्राप्त किये और लिखते–लिखते वह अपनी कला में परिष्कार करते गये। व्यावहारिक रूप में उपन्यास एवं कहानियों की रचना करने के साथ–साथ उन्होंने साहित्य के स्वरूप एवं प्रविधि के संबंध में अपने सैद्धांतिक विचारों को भी प्रस्तुत किया है। प्रौढ़ साहित्यकार के उद्‌गार होने के कारण प्रेमचंद के इन विचारों का निजी एवं स्थायी महत्व है। इनके साहित्य की परिभाषा, उद्दे''य, आद''र्वाद–यथार्थवाद तथा भाषा के स्वरूप से संबद्ध विचारों को देखा जा सकता है। प्रेमचंद्र जी ने कहा है कि साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए। वास्तव में साहित्य गुण–दोष का वि''लेषण करने वाला आलोचक ही नहीं है, यह विधायक कलाकार है। वह जीवन की समस्याओं पर विचार भी करता है और उन्हें हल करता है।

संकेत शब्द : *उपन्यासकार, उर्दू, साहित्य, सैद्धांतिक विचारों, आद''र्वाद–यथार्थवाद*

1-1 प्रस्तावना

मुंशी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी के लमही ग्राम में हुआ था। मुंशी प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपत राय था। उनके पिता अजायबराय डाकखाने में एक क्लर्क थे। बचपन में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था तथा उसके बाद सौतेली मां के नियंत्रण में रहने

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

के कारण उनका बचपन बहुत ही कष्ट में बीता धनपत को बचपन स ही कहानी सुनने का बड़ा शौक था। इसी शौक ने इन्हें महान कहानीकार व उपन्यासकार बना दिया। प्रेमचंद की शिक्षा का प्रारंभ उर्दू से हुआ। पढ़ाई में तेज होने के कारण शीघ्र ही मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। कठोर परिश्रम के चलते इंटर और बीए भी जल्दी ही पास कर लिया। स्नातक होने के बाद अल्पायु में ही प्रेमचंद का विवाह कर दिया गया। लेकिन मनोनुकूल पत्नी न होने के कारण बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह कर लिया।

प्रेमचंद के उपनाम से लिखने वाले धनपत राय श्रीवास्तव हिन्दी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक हैं। उन्ह मुंशी प्रेमचंद व नवाब राय के नाम से भी जाना जाता है। उन्हें उपन्यास सम्राट के नाम से भी नवाजा गया था। इस नाम से उन्हें सर्वप्रथम बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने संबोधित किया था।

प्रेमचंद निर्विवाद रूप से आज भी हिंदी के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले व लोकप्रिय लेखक हैं। परंतु इधर, कुछ वर्षों में उन्हें लेकर विवाद भी बहुत बढ़े हैं। हिंदी में जब से विमर्शों का दौर शुरू हुआ है, तब से प्रेमचंद को विमर्शों के केंद्र में लाया गया है। विमर्शों में प्रेमचंद विवादित हैं। ऐसा लगता है कि उन्हें लेकर जिन बिंदुओं पर विवाद है, उन बिंदुओं पर कायदे का संवाद नहीं हो पा रहा है। प्रेमचंद को हिंदी में लंबे समय तक मार्क्सवादी आलोचना पद्धति के सहारे देखने का उद्यम होता रहा है। इस दृ ष्टि से उन्हें देखने का काम बहुत हद तक हो भी चुका है। इसलिए अब हमें विमर्शों के निहितार्थ को उद्घाटित करने तथा विमर्शों की वैचारिकी के आईने में प्रेमचंद की विचारधारात्मक समझदारी को देखने की जरूरत है। समक्ष एक चुनौती भरा प्रश्न है कि आखिर उनके विमर्शों में आर्थिक सवाल इतने गौण क्यों हैं? क्या इस सवाल का जवाब उन्हें उत्तर–आधुनिकतावाद के विमर्शकारों से नहीं मांगना चाहिए?

उत्तर–आधुनिकतावाद मूलतः एक पूंजीवादी परिघटना है। यह पूंजीवाद का विरोधी नहीं है। कुछ विचारकों ने इसे वृद्ध पूंजीवाद का नाम दिया है। इसने आधुनिक पूंजीवाद के आधारों में महज कुछ बदलाव भर किया है। यह सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में गैर–बराबरी का विरोधी होने का दावा तो करता है लेकिन इसे खत्म करता हुआ नहीं दिखता। आखिर इसके इतने दावों के बावजूद किसानों, मजदूरों व वंचित वर्गों की स्थितियों में अपेक्षित बदलाव क्यों नहीं दिखाई पड़ता है? आखिर क्यों पूंजीपति वर्गों की स्थितियों में इतने गुणात्मक परिवर्तन लक्षित किये जा रहे हैं? तो क्या विचारधाराओं पर इतनी चोटें सिर्फ पूंजीवादी हितों के पोषण के लिए तो नहीं की जा रही हैं?

उत्तर–आधुनिकतावाद समग्रता का विरोधी है, इसीलिए यह व्यक्ति को समाज की इकाई के रूप मे नहीं बल्कि एक स्वतंत्र अस्मिता के रूप में देखता है। इसी विचार के कारणस्वरूप बोद्रीलां का 'उपभोक्ता समाज' वजूद में आया, जिसने व्यक्ति को एक असंतुष्ट उपभोक्ता बना कर रख दिया है। प्रेमचंद की

समाजवादी विचारधारा में व्यक्ति के पतन के लिए इतने अवसर नहीं हैं और न तो किसी एक व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति को पतित करने की स्वतंत्रता है। वे 'महाजनी सभ्यता' में ही लिखते हैं कि 'हाँ, इस समाज व्यवस्था ने व्यक्ति को यह स्वाधीनता नहीं दी है कि वह जनसाधारण को अपनी महत्वाकांक्षाओं की तृप्ति का साधन बनाये।' इसी लेख में वे कहते हैं– 'निःसन्देह इस नई सभ्यता ने व्यक्ति स्वातंर्त्य के पंजे, नाखून और दांत तोड़ दिये हैं। उसके राज्य में एक पूंजीपति लाखों मजदूरों का खून पीकर मोटा नहीं हो सकता। उसे अब यह आजादी नहीं कि अपने नफे के लिए साधारण वस्तुओं के दाम चढ़ा सके।' प्रेमचंद जिस विचारधार की हिमायत कर रहे थे, वह निश्चय ही शोषण पर आधारित पूंजीवादी विचारों के प्रतिकूल था। वे जिस व्यवस्था के पक्ष में खड़े थे, उस व्यवस्था में व्यक्ति को समाज की एक इकाई के रूप में देखा गया है।

उत्तर–आधुनिकतावाद व्यक्ति को समाज से काट कर उसे एक स्वतंत्र अस्मिता के रूप में देखता है। ऐसे में, मूलतः दो किस्म की अस्मिताएँ बनती हुई दिखाई पड़ती हैं। एक अस्मिता पूंजीपतियों की है जिनका उत्पदान के साधनों पर एकाधिकार है और दूसरी अस्मिता उपभोक्ताओं की है। इन दोनों अस्मिताओं के पारस्परिक संबंधों को शोषक–शोषित संबंधों के अतिरिक्त किसी दूसरे अर्थों में समझा ही नहीं जा सकता। क्योंकि यह व्यक्ति स्वातंर्त्य के नाम पर एक तरफ पूंजीपतियों को लूट–खसोट करने की पूरी स्वतंत्रता देता है तो दूसरी तरफ जनसाधारण के व्यक्तियों को उपभोक्ता बना कर पूंजीपतियों के हाथों लुटे जाने के लिए स्वतंत्र छोड़ देता है। उत्तर–आधुनिकतावाद सिर्फ पूंजीवादी हितों के पक्ष में विचारधारा की जगह विमर्शों की, मतैक्य की जगह मतभेदों की, समानता की जगह विषमता की स्थितियों को स्थापित करने का विचार रखता है।

उत्तर–आधुनिकतावाद महावृतांतों को भी स्वीकार नहीं करता है। इसलिए यह 'महावृतांतों की मृत्यु' की घोषणा करता है। फ्रांसिस फूकोयामा इतिहास को महावृतांत मानते हुए 'इतिहास के अंत' का ऐलान करता है। वह इतिहास को मिथ्या मानता है और इसे वर्चस्व स्थापित करने के साधन रूप में देखता है। 1990 ई0 में आल्विन कार्नान 'साहित्य की मृत्यु' की घोषणा कर देता है। वैसे,

इससे पहले भी साहित्यिक विधाओं की मृत्यु के फतवे जारी होते रहे हैं। प्रेमचंद के निधन के चार साल बाद 1940 ई0 में इलियट ने भी 'उपन्यास की मृत्यु' की घोषणा की थी। एडमंड विल्सन ने भी कविता को 'मरती हुई विधा' कहा था। लेकिन उत्तर–आधुनिकता का परिप्रेक्ष्य कुछ दूसरा ही है। यह किसी भी साहित्यिक रचना को बाकी पाठों की तरह मात्र एक 'पाठ' मान कर चलता है और इसका संबंध सिर्फ पाठकों तक सीमित करता है। यह लेखक से रचना का संबंध तोड़ देता है। उत्तर–आधुनिकतावाद रचना से लेखक की केंद्रीय स्थिति को समाप्त कर देता है जबकि किसी भी रचना के केंद्र में लेखक की उपस्थिति अनिवार्य रूप में होती है। लायनल ट्रिलिंग ने एक लेख में

'लेखक का अंत' लिखा और रोला बार्थ ने 'लेखक की मृत्यु' घोषित की। इन सबों ने अपने लेखों में यह दावा किया कि लेखक के महत्व का दौर समाप्त हो चुका है और अब पाठक के महत्व का दौर शुरू हो चुका है। इस तरह पाठक के महत्व के लिए लेखक की मृत्यु कर दी गयी।

1-2 उद्देश्य

प्रेमचंद का मानना है कि साहित्य की भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित हो। साहित्य में विषय को सीमित रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि उसके विस्तृत रूप को विश्लेषित किया जाता है। साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है बल्कि वर्तमान समय में साहित्य का उद्देश्य जीवन की समस्याओं पर भी विचार करना और उनका समाधान भी करना है।

भाषाओं में विमर्शों का दौर शुरू हुआ है। चूंकि इन विमर्शों का स्वभाव अस्मितामूलक है, इसलिए ये विविध किस्म की अस्मिताओं की छटपटाहट और टकराहट पर केंद्रित हैं। इस दौर में अचानक अनेक प्रकार की अस्मिताएँ उभरकर सामने आयी हैं। उनमें नारीवादी अस्मिता, दलित अस्मिता, आदिवासी अस्मिता, पिछड़ी अस्मिता, अति पिछड़ी अस्मिता जैसी अनेक अस्मिताओं का विमर्श साहित्य के केंद्र में प्रमुखता के साथ जगह घेरने लगा है। इन अस्मितावादी विमर्शों ने प्रेमचंद को काफी तीक्ष्णता से लक्ष्य किया है। दलित विमर्श में दलित जीवन संबंधी लेखन के सवालों पर प्रेमचंद को खारिज कर दिया गया है और उन पर सवर्णवादी होने तक की तोहमत लगायी गयी है। इसी प्रकार नारीवादी विमर्श में भी प्रेमचंद को मर्दवादी साहित्यकार के रूप में रेखांकित करने की कोशिशें दिखाई पड़ती हैं। अनुभूति और सहानुभूति के विवादों को लाकर उनके लेखन की परिधि को न सिर्फ संकुचित करने की कोशिशें हुई हैं, बल्कि उनके साहित्य की विश्वसनीयता को भी कमजोर बनाने की कोशिशें दिखाई पड़ती हैं। ऐसे में, अब विमर्शों ने प्रेमचंद की एक महान कथाकार वाली छवि को वैसी ही नहीं रहने दी है, जैसी पहले थी।

साहित्य के भीतर अस्मितामूलक विमर्श उत्तर–आधुनिकतावाद की देन है। यह विचारधारा की जगह विमर्शों को प्रोत्साहित करता है। विमर्शों में जीवन या समाज को समग्रता में देखने की जगह विखण्डित रूप में देखने पर बल रहता है। इसलिए यह डेनियल बेल के विचारों को नारा की तरह बार–बार दुहराता है कि 'विचारधारा का अंत' हो गया है। आखिर उत्तर–आधुनिकतावाद को विचारधारा से इतनी परेशानी क्यों है? जीन–फ्रैंकोइस ल्योतार इस परेशानी का कारण बताता है कि मार्क्सवाद, गांधीवाद, विकासवाद, समाजवाद, प्रजातंत्र आदि जैसी विचारधाराएँ किसी न किसी एक के पक्ष में थीं और दूसरे के विरोध में थीं। इसीलिए उत्तर–आधुनिकतावाद में एक निरपेक्ष महत्व की चीज के रूप में 'विचारधारा का अंत' घोषित कर दिया गया है।

ल्योतार के तर्कों के आधार पर विमर्शों की इस वास्तविकता को समझना आसान हो जाता है कि विमर्शों में आखिर प्रेमचंद को इतना लक्ष्य क्यों किया जाता है। कहीं इसलिए तो नहीं कि प्रेमचंद शोषित–उत्पीड़ित मनुष्य के पक्षधर थे और वे उत्पीड़क और शोषक के विरोध में थे। 1936 ई0 में अपनी मृत्यु के कुछ महीनों पहले 'महाजनी सभ्यता' नामक लेख में उन्होंने कहा है कि 'मनुष्य समाज दा भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का है, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को बस में किये हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रुरियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इस लिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाए, खून गिराए और चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाय।' प्रेमचंद यहाँ श्रमिकों के पक्ष में खड़े हैं। तो उत्तर–आधुनिकतावाद आखिर यह क्यों चाहता है कि प्रेमचंद शोषण और उत्पीड़न के बावजूद इन श्रमिकों के पक्ष में खड़ा न हों!

1-3 शोध पद्धति

परियोजना के लिए शोध प्राविधि की द्रितीयक पद्धति का प्रयोग किया गया है। तथ्यों के संग्रह के लिए अध्याय रचनाओं पर किये गए पूर्व शोध ग्रंथों, सम्बंधित पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं एवं इंटरनेट की मदद ली गए है।

1-4 विचारधारा

प्रेमचंद लगभग अपने 36 वर्षों की साहित्यिक जीवन–यात्रा में गांधीवाद के रास्ते चल कर मार्क्सवाद तक पहुँचे थे। वे अपने लेख 'महाजनी सभ्यता' में मार्क्सवादी समाज व्यवस्था का स्वप्न देखते हुए लिखते हैं कि 'नई सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा ह, जिस ने इस नारकीय महाजनवाद या पूंजीवाद की जड़ खोद कर फैंक दी है, जिस का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत कर के कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप–दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है, वह पतितम प्राणी है।' प्रेमचंद समाजवादी व्यवस्था में श्रम के महत्व की प्रतिष्ठा का उल्लेख कर रहे थे और महाजनवादी या पूंजीवादी व्यवस्था को श्रमिकों के शोषण का वास्तविक कारण बता रहे थे। उनके सामने समाज में दो वर्ग मुख्य रूप से थे। एक शोषक और दूसरा शोषित और वे यह मान रहे थे कि इस पूंजीवादी व्यवस्था में दोनों का वर्गीय चरित्र आर्थिक कारकों से निर्मित होते हैं।

अस्मितावादी विमर्शों में आर्थिक आधारों पर वर्गीय चरित्र की समझ का घोर अभाव दिखाई पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, जहाँ नारीवादी विमर्श में स्त्रियों के शोषण का प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक सामाजिक

व्यवस्था को समझा जाता है, वहीं दलित विमर्श में दलित समुदाय के शोषण का मूल कारण वर्ण–व्यवस्था को समझा जाता है। इसी प्रकार से अलग–अलग शोषितों का अलग–अलग समूह बनता ह और उन्हें अपने शोषण के आधार भी अलग–अलग दिखाई पड़ते हैं। अस्मितावादी विमर्शों में आर्थिक सवाल गौण रूप में आते हैं। परंतु जब इन विमर्शों में आर्थिक सवाल अर्थात उत्पादन की शक्तियों पर एकाधिकार का सवाल उभर कर सामने आता है, तब ये विमर्श अंततः एक–दूसरे के विरोध में खड़े दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में प्रेमचंद के धर्म और संस्कृति संबंधी विचार आंदोलनकारी लगते हैं। वह अपने निबंध में लिखते हैं,

'हिंदू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी–अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं, यह भूल गए हैं कि अब न कहीं हिंदू संस्कृति है, न मुस्लिम संस्कृति और न कोई अन्य संस्कृति।

अब संसार में केवल एक संस्कृति है और वह है आर्थिक संस्कृति, मगर आज भी हिंदू और मुस्लिम संस्कृति का रोना रोए चले जाते हैं, हालांकि सस्कृति का धर्म से कोई संबंध नहीं।'

सच ही तो कहा जा रहा है कि जिस धर्म और संस्कृति की रक्षा की दुहाई भारत जैसे हिंदू बहुसंख्यक देश में हिंदुओं द्वारा ही दी जाती है और इसे धर्म से ऊपर उठाकर राष्ट्र और देशभक्ति के स्तर तक पहुंचा दिया जाता है, वहां एक नितांत विशुद्ध संस्कृति की बात करना तो निहायत ही मूर्खता और विडंबना की बात है।

सदियों से साथ रहते–बसते आने वाले दो धर्म अगर विशुद्ध संस्कृति की बात करें तो यह महज राजनीतिक और सियासी बिसात के अलावा और कुछ नहीं है।

कमोबेश यही बात प्रेमचंद भी उस समय कर रहे थे जब उन्हें लगता था कि न केवल ब्रिटिश शासक बल्कि इन दोनों धर्मों के कुछ राजनीति से प्रेरित उच्च वर्ग ही धर्म और संस्कृति के आधार पर जनता में अलगाव खड़ा करना चाहते थे।

प्रेमचंद लिखते हैं,

'३ फिर हमारी समझ में नहीं आता कि वह कौन सी संस्कृति है, जिसको रक्षा के लिए सांप्रदायिकता इतना जोर बांध रही हैं। वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा पाखंड। यह सीधे आदमियों को सांप्रदायिकता की ओर घसीट लाने का केवल एक मंत्र है और कुछ नहीं। हिंदू और मुस्लिम संस्कृ ति के रक्षक वही महानुभाव और वही समुदाय ह, जिनको अपने ऊपर अपने देशवासियों के ऊपर और सत्य के ऊपर कोई भरोसा नहीं, इसलिए अनंत तक एक ऐसी शक्ति की जरूरत समझते हैं, जो उनके झगड़ों में सरपंच का काम करती रहे, और सच ही जब हम आम जनता को रातों–रात तथाकथित गोरक्षकों में तब्दील होते और दादरी या पहलू खान जैसे लिंचिंग की घटनाओं को अंजाम देते हुए

देखते हैं तो लगता है कि हमेशा से कितना आसान रहा है, धर्म और संस्कृति के नाम पर लोगों को हत्यारी भीड़ में तब्दील कर देना।

प्रेमचंद के हिंदू–मुस्लिम एकता या सांप्रदायिकता संबंधी विचारों को आज उनके जन्म के 140 वर्ष बाद याद करने की क्या आवश्यकता है, यह तो अब शायद प्रश्न का विषय नहीं रहा। प्रेमचंद जैसे रचनाकार व्यक्तित्व के लिए इस प्रकार की वैचारिक असंबद्धता को हमें उनके समय के प्रभावों के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए, न कि किसी पूर्वाग्रह के रूप में।

क्योंकि उस दौर के राष्ट्रवादी नेता भी कहीं–न–कहीं इस विरोधी चेतना से प्रभावित थे और अपनी चिंताओं को समुदाय से बढ़ा कर राष्ट्र–मुक्ति की ओर केंद्रित करने में लगे हुए थे। पर इन सब बातों के बावजूद भी प्रेमचंद की प्रासंगिकता और उनके रचनाओं में हर स्तर पर दिखने वाली सांप्रदायिक सहिष्णुता की छटा को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

उनका मुखर विरोधी भी इस बात से मुंह नहीं मोड़ सकता कि एक ऐसे समय में जब समाज में दो समुदायों के बीच धर्म और संस्कृति के नाम पर जहर घोला जा रहा था, तब प्रेमचंद अपनी गुरबत में भी एक बने रहने की बात कर रहे थे। प्रेमचंद का विपुल साहित्य इस बात का प्रमाण है कि केवल भाषा के स्तर पर उन्होंने उर्दू और हिंदी में कोई पूर्वाग्रह नहीं किया, जो हम आज के दौर में देखते हैं, बल्कि अपनी रचनाओं में मुस्लिम समुदाय और पात्रों के माध्यम से उनके संसार, उनक स्वप्नों, उनके दुखों को आवाज दी। चाहे फिर वो कहानियों के माध्यम से (ईदगाह, पंचायत, जुलूस, क्षमा, मंदिर और मस्जिद) हों या कर्बला जैसे नाटकों या उपन्यास जैसे प्रेमाश्रम और रंगभूमि से, प्रेमचंद एक ऐसे मानवतावादी लेखक के रूप में नजर आते हैं, जिसने दोनो ही समुदायों के आंतरिक जीवन को एक समान रूप में चित्रित किया।

इनमें कहीं भी प्रेमचंद आपको किसी समुदाय विशेष का पक्ष लेते हुए नहीं दिखेंगे। एक सच्चे प्रगतिशील लेखक होने के ही प्रमाण में उनकी गोमांस संबंधी अवधारणा है, जो हम यहां उदाहरण के तौर पर देख सकते हैं। यहां उनके विचारों को जानकर ऐसा लगता है कि वो अपने समय से आगे के लेखक थे। प्रेमचंद लिखते हैं,'हां, मुसलमान गाय की कुर्बानी करते हैं और उनका मांस खाते हैं लेकिन हिंदुओं में भी ऐसी जातियां मौजूद हैं, जो गाय का मांस खाती हैं यहां तक कि मृतक का मांस भी नहीं छोड़तीं। संसार में हिंदू ही एक जाति है, जो गोमांस को अखाद्य या अपवित्र समझती है तो क्या इसलिए हिंदुओं को समस्त विश्व से धर्मसंग्राम छेड़ देना चाहिए? हिंदू गाय की पूजा स्वयं कर सकते हैं, पर उन्हें दूसरों को भी ऐसे ही करने को बाध्य करने का तो कोई अधिकार नहीं है।' इसी तरह से प्रेमचंद के विचारों पर हर दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि कोई भी महान लेखक या विचारक अपने समय के सत्य से जुड़कर ही अपनी रचना में अर्थवत्ता ला सकता है और प्रेमचंद तो

एक ऐसे समय की उपज थे जहां पर आज सरीखे बुद्धिजीवी नहीं हुआ करते थे, जिनका जमीन से कोई वास्ता न हों, पर बातें भले जमीनी करते हों।

1.5 प्रेमचंद की कहानी उनके प्रसंशको के द्वारा

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के व्यक्तित्व के बारे में तमाम लोगों ने कलम चलाई है। खुद उनके बेटे अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' नाम से मुंशी प्रेमचंद की जीवनी लिखी है। लेकिन एक जीवनी उनकी पत्नी शिवरानी देवीने भी लिखी है 'प्रेमचंद घर में'। प्रेमचंद के व्यक्तित्व और उनके साहित्य को समझने के लिए यह एक प्रमाणिक सूत्र है। शिवरानी देवी, प्रेमचंद के साथ रहते हुए उनके जीवन की तमाम छोटी–बड़ी घटनाओं की साक्षी रही हैं।

पत्नी द्वारा लिखी गई प्रेमचंद की जीवनी 'प्रेमचंद घर में' का पहली बार प्रकाशन हुआ सन् 1944 में। हिंदुस्तानी पब्लिशिंग हाउस ने सन् 1952 में इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया। आज इसका जो संस्करण उपलब्ध है, उसे रोशनाई प्रकाशन ने सन 2005 में प्रस्तुत किया था। इसमें वर्तनी में कतिपय संशोधनों के साथ नुक्तों के प्रयोग से भी बचा गया है। इस संस्करण की एक विशेषता यह भी है कि इसमें अपनी नानी शिवरानी के बारे में प्रबोध कुमार ने एक नातिदीर्घ संस्मरण भी दिया है। कई अर्थों में महत्वपूण यह संस्मरण यह जानकारी भी देता है कि इस पुस्तक के दूसरे संस्करण को लाते समय कुछ चीजें जोड़ी–घटाई भी गईं।

1.6 भाषा का स्वरुप

आज भी कहा जा सकता है कि इस देश की राष्ट्रभाषा के आदर्श रूप का सर्वोत्तम उदाहरण प्रेमचंद की भाषा है। प्रेमचंद का भाषा–चिन्तन जितना तार्किक और पुष्ट है उतना किसी भी भारतीय लेखक का नहीं है। 'साहित्य का उद्देश्य' नाम की उनकी पुस्तक में भाषा–केन्द्रित उनके चार लेख संकलित हैं जिनमें भाषा संबंधी सारे सवालों के जवाब मिल जाते हैं। इन चारो लेखों के शीर्षक है, 'राष्ट्रभाषा हिन्दी आर उसकी समस्याएं', 'कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार', 'हिन्दी–उर्दू की एकता' तथा 'उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी'। 'कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार' शीर्षक निबंध वास्तव में बम्बई में सम्पन्न राष्ट्रभाषा सम्मेलन में स्वगताध्यक्ष की हैसियत से 27 अक्टूबर 1934 का दिया गया उनका व्याख्यान है। इसमें वे लिखते है, "समाज की बुनियाद भाषा है। भाषा के बगैर किसी समाज का खयाल भी नहीं किया जा सकता। किसी स्थान की जलवायु, उसके नदी और पहाड़, उसकी सर्दी और गर्मी और अन्य मौसमी हालातें, सब मिल–जुलकर वहां के जीवों में एक विशेष आत्मा का विकास करती हैं, जो प्राणियों की शक्ल–सूरत, व्यवहार, विचार और स्वभाव पर अपनी छाप लगा देती हैं और अपने को व्यक्त करने के लिए एक विशेष भाषा या बोली का निर्माण करती हैं। इस तरह हमारी भाषा

का सीधा संबंध हमारी आत्मा से हैं। ३३।। मनुष्य में मेल–मिलाप के जितने साधन हैं उनमें सबसे मजबूत असर डालने वाला रिश्ता भाषा का है। राजनीतिक, व्यापारिक या धार्मिक नाते जल्द या देर में कमजोर पड़ सकते हैं और अक्सर बदल जाते हैं। लेकिन भाषा का रिश्ता समय की, और दूसरी विखरने वाली शक्तियों की परवाह नहीं करता और इस तरह से अमर हो जाता है।

पिछले कुछ वर्षों से बोली और भाषा के रिश्ते को लेकर बहुत बाद–विवाद चल रहा है। भोजपुरी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी आदि कुछ हिन्दी की बोलियां हिन्दी परिवार से अलग होकर संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने की माँग कर रही हैं। इस संबंध को लेकर प्रेमचंद लिखते हैं, "जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता जाता है, यह स्थानीय भाषाएं किसी सूबे की भाषा में जा मिलती हैं और सूबे की भाषा एक सार्वदेशिक भाषा का अंग बन जाती हैं। हिन्दी ही में ब्रजभाषा, बुन्देलखंडी, अवधी, मथिल, भोजपुरी आदि भिन्न–भिन्न शाखाएं हैं, लेकिन जैसे छोटी–छोटी धाराओं के मिल जाने से एक बड़ा दरिया बन जाता है, जिसमें मिलकर नदियाँ अपने को खो देती हैं, उसी तरह ये सभी प्रान्तीय भाषाएं हिन्दी की मातहत हो गयी हैं और आज उत्तर भारत का एक देहातो भी हिन्दी समझता है और अवसर पड़ने पर बोलता है। लेकिन हमारे मुल्की फैलाव के साथ हमें एक ऐसी भाषा की जरूरत पड़ गयी है जो सारे हिन्दुस्तान में समझी और बोली जाय, जिसे हम हिन्दी या गुजराती या मराठी या उर्दू न कहकर हिन्दुस्तानी भाषा कह सकें, जैसे हर एक अंगज या जर्मन या फ्रांसीसी फ्रेंच या जर्मन या अंग्रेजी भाषा बोलता और समझता है। हम सूबे की भाषाओं के विरोधी नहीं हैं। आप उनमें जितनी उन्नति कर सकें करें। लेकिन एक कौमी भाषा का मरकजी सहारा लिए बगैर एक राष्ट्र की जड़ कभी मजबूत नहीं हो सकती।"

प्रेमचंद चिन्ता व्यक्त करते हैं, "अंग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का हमारे ऊपर जैसा आतंक है, उससे कहीं ज्यादा अंग्रेजी भाषा का है। अंग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से तो आप बगावत करते हैं लेकिन अंग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक की तरह गर्दन में डाल हुए हैं। अंग्रेजी राज्य की जगह आप स्वराज्य चाहते हैं। उनके व्यापार की जगह अपना व्यापार चाहते हैं, लेकिन अंग्रेजी भाषा का सिक्का हमारे दिलों पर बैठ गया है। उसके बगैर हमारा पढ़ा–लिखा समाज अनाथ हो जाएगा।" प्रेमचंद अंग्रेजी जानने वालों और अंग्रेजी न जानने वाला के बीच स्तर–भेद का तार्किक विवेचन करते हुए कहते हैं, "पुराने समय में आर्य और अनार्य का भेद था, आज अंग्रेजीदाँ और गैर–अंग्रेजीदाँ का भेद है। अंग्रेजीदाँ आर्य हैं। उसके हाथ में अपने स्वामियों की कृपादृष्टि की बदौलत कुछ अख्तियार है, रोब है, सम्मान है। गैर–अंग्रेजीदाँ अनार्य हैं और उसका काम केवल आर्यों की सेवा–टहल करना है और उसके भोग–विलास और भोजन के लिए सामग्री जुटाना है। यह आर्यवाद बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, दिन दूना रात चौगुना ३३।। हिन्दुस्तानी साहबों की अपनी विरादरी हो गयी है, उनका रहन–सहन, चाल–ढाल, पहनावा, बर्ताव सब साधारण जनता से अलग है, साफ मालूम होता

है कि यह कोई नई उपज है।", प्रेमचंद हमें आगाह करते हैं, "जबान की गुलामी ही असली गुलामी है। ऐसे भी

देश, संसार में हैं जिन्होंने हुक्मराँ जाति की भाषा को अपना लिया। लेकिन उन जातियों के पास न अपनी तहजीब या सभ्यता थी और न अपना कोई इतिहास था, न अपनी कोई भाषा थी। वे उन बच्चों की तरह थे, जो थोड़े ही दिनों में अपनी मातृभाषा भूल जाते हैं और नयी भाषा में बोलने लगते हैं। क्या हमारा शिक्षित भारत वैसा ही बालक है? ऐसा मानने की इच्छा नहीं होती, हालाँकि लक्षण सब वही हैं।"

कौमी भाषा के स्वरूप पर प्रेमचंद ने बहुत गंभीरता के साथ और तर्क व उदाहरण देकर विचार किया है। वे कहते हैं, "सवाल यह होता है कि जिस कौमी भाषा पर इतना जोर दिया जा रहा है, उसका रूप क्या है? हमें खेद है कि अभी तक उसकी कोई खास सूरत नहीं बना सके हैं, इसलिए कि जो लोग उसका रूप बना सकते थे, वे अंग्रेजी के पुजारी थे और हैं। मगर उसकी कसौटी यही है कि उसे ज्यादा से ज्यादा आदमी समझ सकें। हमारी कोई सूबेवाली भाषा इस कसौटी पर पूरी नही उतरती। सिर्फ हिन्दुस्तानी उतरती है, क्योंकि मेरे ख्याल में हिन्दी और उर्दू दोनो एक जबान है। क्रिया और कर्ता, फेल और फाइल जब एक है तो उनके एक होने में कोई संदेह नहीं हो सकता। उर्दू वह हिन्दुस्तानी जबान है, जिसमें फारसी–अरबी के लफ्ज ज्यादा हों, इसी तरह हिन्दी वह हिन्दुस्तानी है, जिसमें संस्कृत के शब्द ज्यादा हों। लेकिन जिस तरह अंग्रेजी में चाहे लैटिन या ग्रीक शब्द अधिक हों या ऐंग्लोसेक्सन, दोनों ही अंग्रेजी है, उसी भाँति हिन्दुस्तानी भी अन्य भाषाओं के शब्दों में मिल

जाने से कोई भिन्न भाषा नहीं हो जाती। साधारण बातचीत में तो हम हिन्दुस्तानी का व्यवहार करते ही हैं।"

प्रेमचंद ने उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी, भाषा के तोनों रूपों का अलग अलग उदाहरण दिया है। उनके द्वारा दिया गया हिन्दुस्तानी का उदाहरण निम्न है,

"एक जमाना था, जब देहातों में चरखा और चक्की के बगैर कोई घर खाली न था। चक्की–चूल्हे से छुट्टी मिली, तो चरखे पर सूत कात लिया। औरतें चक्की पीसती थी। इससे उनकी तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी रहती थी, उनके बच्चे मजबूत और जफाकश होते थे। मगर अब तो अंग्रेजी तहजीब और मुआशरत ने सिर्फ शहरों में ही नहीं, देहातों में भी कायापलट दी है। हाथ को चक्की के बजाय अब मशीन का पिसा हुआ आटा इस्तोमाल किया जाता है। गावों में चक्की न रही तो चक्की पर का गीत कौन गाए? जो बहुत गरीब हैं वे अब भी घर की चक्की का आटा इस्तेमाल करते हैं। चक्की पीसने

का वक्त अमूमन रात का तीसरा पहर होता है। सरे शाम ही से पीसने के लिए अनाज रख लिया जाता है और पिछले पहर से उठकर औरतें चक्की पीसने बैठ जाती हैं।"

उक्त उदाहरण देने के बाद प्रेमचंद लिखते हैं, "इस पैराग्राफ को मैं हिन्दुस्तानी का बहुत अच्छा नमूना समझता हूँ, जिसे समझने में किसी भी हिन्दी समझने वाले आदमी को जरा भी मुश्किल न पड़ेगी।"

किन्तु प्रेमचंद अपने समय के यथार्थ को भली–भाँति समझते थे। उन्होंने लिखा है, "एक तरफ हमारे मौलवी साहबान अरबी और फारसी के शब्द भरते जाते है, दूसरी ओर पंडितगण, संस्कृत और प्राकृत के शब्द ठूँस रहे है और दोनो भाषाएं जनता से दूर होती जा रही हैं। हिन्दुओं की खासी तादाद अभी तक उर्दू पढ़ती आ रही है, लेकिन उनकी तादाद दिन प्रति –दिन घट रही है। मुसलमानों ने हिन्दी से कोई सरोकार रखना छोड़ दिया। तो क्या यह तै समझ लिया जाय कि उत्तर भारत में उर्दू और हिन्दी दो भाषाएं अलग–अलग रहेंगी? उन्हें अपने–अपने ढंग पर, अपनी–अपनी संस्कृति के अनुसार बढ़ने दिया जाय। उनको मिलने की और इस तरह उन दोनों की प्रगति को रोकने की कोशिश न की जाय? या ऐसा संभव है कि दोनो भाषाओं को इतना समीप लाया जाय कि उनमें लिपि के सिवा कोई भेद न रहे। बहुमत पहले निश्चय की ओर है। हाँ, कुछ थोड़े से लोग ऐसे भी है जिनका ख्याल है कि दोनो भाषाओं में एकता लायी जा सकती है और इस बढ़ते हुए फर्क को रोका जा सकता है। लेकिन उनका आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज है। ये लोग हिन्दी और उर्दू नामों का व्यवहार नहीं करते, क्योंकि दो नामों का व्यवहार उनके भेद को और मजबूत करता है। यह लोग दोनों को एक नाम से पुकारते हैं और वह हिन्दुस्तानी है।"

कहना न होगा, प्रेमचंद द्वारा प्रस्तावित हिन्दुस्तानी को नकार कर और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने के 70 साल बाद भी, प्रेमचंद द्वारा दिए गए उक्त उद्धरण में सिर्फ दो शब्द (जफाकश और मुआशरत) ऐसे हैं जिनको लेकर हिन्दी वालों की थोड़ी मुश्किल हो सकती है। किन्तु भाषा की सरलता आज भी विमुग्ध करने वाली है। प्रेमचंद और गाँधीजी के सुझाव न मानकर हमने एक ही भाषा को हिन्दी और उर्दू में बाँट दिया, उन्हें मजहब से जोड़ दिया और इस तरह दुनिया की सबसे समृद्ध, बड़ी और ताकतवर हिन्दी जाति को धर्म के आधार पर दो हिस्सों में बाँटकर कमजोर कर दिया और उनके बीच सदा–सदा के लिए अलंघ्य और अटूट चौड़ी दीवार खड़ी कर दी।

हमने राजभाषा हिन्दी और अपने साहित्य की भाषा को भी जिस संस्कृतनिष्ठता से बोझिल बना दिया है उससे आगाह करते हुए प्रेमचंद ने उसी समय कहा था,

"हिन्दी में एक फरीक ऐसा है, जो यह कहता है कि चूंकि हिन्दुस्तान की सभी सूबेवाली भाषाएं संस्कृत से निकली हैं और उनमें संस्कृत के शब्द अधिक हैं इसलिए हिन्दी में हमें अधिक से अधिक संस्कृत के शब्द लाने चाहिए, ताकि अन्य प्रान्तों के लोग उसे आसानी से समझें। उर्दू की मिलावट करने से हिन्दी का कोई फायदा नहीं। उन मित्रों को मैं यही जवाब देना चाहता हूं कि ऐसा करने से दूसरे सूबों के

लोग चाहे आप की भाषा समझ लें, लेकिन खुद हिन्दी बोलने वाले न समझेंगे। क्योंकि, साधारण हिन्दी बोलने वाला आदमी शुद्ध संस्कृत शब्दों का जितना व्यवहार करता है उससे कहीं ज्यादा फारसी शब्दों का। हम इस सत्य की ओर से आँखें नहीं बन्द कर सकते और फिर इसकी जरूरत ही क्या है कि हम भाषा को पवित्रता की धुन में तोड़–मरोड़ डालें। यह जरूर सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर होता है, लेकिन लिखित भाषा सदैव बोलचाल की भाषा से मिलते–जुलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की खूबी यही है कि वह बोलचाल की भाषा से मिले।"

इस संबंध में महात्मा गाँधी की प्रशंसा करते हुए प्रमचंद ने लिखा है, "कितने खेद की बात है कि महात्मा गाँधी के सिवा किसी भी दिमाग ने कौमी भाषा की जरूरत नहीं समझी और उसपर जोर नहीं दिया। यह काम कौमी सभाओं का है कि वह कौमी भाषा के प्रचार के लिए इनाम और तमगे दें, उसके लिए विद्यालय खोलें, पत्र निकालें और जनता में प्रोपेगैंडा करें। राष्ट्र के रूप में संघटित हुए बगैर हमारा दुनिया में जिन्दा रहना मुश्किल है। यकीन के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता कि इस मंजिल पर पहुँचने की शाही सड़क कौन सी है। मगर दूसरी कौमों के साथ कौमी भाषा को देखकर सिद्ध होता है कि कौमियत के लिए लाजिमी चीजों में भाषा भी है और जिसे एक राष्ट्र बनना है उसे एक कौमी भाषा भी बनानी पड़ेगी।"

प्रेमचंद ने लिपि के सवाल पर भी गंभीरता के साथ विचार किया है आर साफ शब्दों में अपना मत व्यक्त किया है।" प्रान्तीय भाषाओं को हम प्रान्तीय लिपियों में लिखते जायँ, कोई एतराज नहीं, लेकिन हिन्दुस्तानी भाषा के लिए एक लिपि रखना ही सुविधा की बात है, इसलिए नहीं कि हमें हिन्दी लिपि से खास मोह है बल्कि इसलिए कि हिन्दी लिपि का प्रचार बहुत ज्यादा है और उसके सीखने में भी किसी को दिक्कत नहीं हो सकती। लेकिन उर्दू लिपि हिन्दी से बिलकुल जुदा है और जो लोग उर्दू लिपि के आदी हैं, उन्हें हिन्दी लिपि का व्यवहार करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। अगर जबान एक हो जाय तो लिपि का भेद काई महत्व नहीं रखता।" और अन्त में निष्कर्ष देते हैं,

"लिपि का फैसला समय करेगा। जो ज्यादा जानदार है वह आगे आएगी। दूसरी पीछे रह जाएगी। लिपि के भेद का विषय छेड़ना घोड़े के आगे गाड़ी को रखना होगा। हमें इस शर्त को मानकर चलना है कि हिन्दी और उर्दू दोनो ही राष्ट्र–लिपियां हैं और हमें अख्तियार है, हम चाहे जिस लिपि में उसका (हिन्दुस्तानी का) व्यवहार करें। हमारी सुविधा हमारी मनोवृत्ति और हमारे संस्कार इसका फैसला करेंगे। "किन्तु प्रेमचंद को विश्वास है कि "हम तो केवल यही चाहते हैं कि हमारी एक कौमी लिपि हो जायें।" दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के चतुर्थ दीक्षान्त समारोह में दीक्षान्त भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि "अगर सारा देश नागरी लिपि का हो जाएगा तो संभव है मुसलमान भी उस लिपि को कुबूल कर लें। राष्ट्रीय चेतना उन्हें बहुत दिन तक अलग न रहने देगी।"

प्रेमचंद के सुझावों पर अमल न करके हमने देश की भाषा नीति को लेकर जो मार्ग चुना उसके घातक परिणाम आज हमारे सामने हैं। अंग्रेजी के वर्चस्व के नाते हमारे देश की बहुसंख्यक आबादी और गाँवों की छुपी हुई प्रतिभाएं अनुकूल अवसर के अभाव में दम तोड़ रही हैं। देश में मौलिक चिन्तन चुक गया है और दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के बावजूद हम सिर्फ नकलची बनकर रह गए हैं।

रचना–दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपों में, अभिव्यक्त हुई। वह बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। प्रेमचंद की रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। उन्हाने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। अपनी कहानियों से प्रेमचंद मानव–स्वभाव की आधारभूत महत्ता पर बल देते हैं। 'बड़े घर की बेटी,' आनन्दी, अपने देवर से अप्रसन्न हुई, क्योंकि वह गंवार उससे कर्कशता से बोलता है और उस पर खींचकर खड़ाऊँ फेंकता है। जब उसे अनुभव होता है कि उनका परिवार टूट रहा है और उसका देवर परिताप से भरा है, तब वह उसे क्षमा कर देती है और अपने पति को शांत करती है। इसी प्रकार 'नमक का दारोगा' बहुत ईमानदार व्यक्ति है। घूस देकर उसे बिगाड़ने में सभी असमर्थ हैं। सरकार उसे, सख्ती से उचित कार्रवाई करने के कारण, नौकरी से बर्खास्त कर देती है, किन्तु जिस सेठ की घूस उसने अस्वीकार की थी, वह उसे अपने यहाँ ऊँचे पद पर नियुक्त करता है। वह अपने यहाँ ईमानदार और कर्तव्यपरायण कर्मचारी रखना चाहता है। इस प्रकार प्रेमचंद के संसार में सत्कर्म का फल सुखद होता है। वास्तविक जीवन में ऐसी आश्चर्यप्रद घटनाएँ कम घटती हैं। गाँव का पंच भी व्यक्तिगत विद्वेष और शिकायतों को भूलकर सच्चा न्याय करता है। उसकी आत्मा उसे इसी दिशा में ठेलती है। असंख्य भेदों, पूर्वाग्रहों, अन्धविश्वासों, जात–पांत के झगड़ों और हठधर्मियों से जर्जर ग्राम–समाज में भी ऐसा न्याय–धर्म कल्पनातीत लगता है। हिन्दी में प्रेमचंद की कहानियों का एक संग्रह बम्बई के एक सुप्रसिद्ध प्रकाशन गृह, हिन्दी ग्रन्थ–रत्नाकर ने प्रकाशित किया। यह संग्रह 'नवनिधि' शीर्षक से निकला और इसमें 'राजा हरदौल' और 'रानी सारन्धा' जैसी बुन्देल वीरता की सुप्रसिद्ध कहानियाँ शामिल थीं।

1.7 रचनाओं की रूपरेखा

इसके कुछ समय के बाद प्रेमचंद ने हिन्दी में कहानियों का एक और संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह का शीर्षक था 'प्रेम–पूर्णिमा'। 'बड़े घर की बेटी' और 'पंच परमेश्वर' की ही परम्परा की एक और अद्‌भुत कहानी 'ईश्वरीय न्याय' इस संग्रह में थी। शायद कम लोग जानते है कि प्रख्यात कथाकार मुंशी प्रेमचंद अपनी महान् रचनाओं की रूपरेखा पहले अग्रेजी में लिखते थे और इसके बाद उसे हिन्दी अथवा उर्दू में अनूदित कर विस्तारित करते थे। भोपाल स्थित बहुकला केंद्र भारत भवन की रजत जयंती के उपलक्ष्य पर प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर यहाँ आयोजित सात दिवसीय प्रदर्शनी में

इस तथ्य का खुलासा करते हुए उनकी कई हिन्दी एवं उर्दू रचनाओं की अंग्रेजी में लिखी रूपरेखाएँ प्रदर्शित की गई हैं। प्रदर्शनी के संयोजक और हिन्दी के समालोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस अवसर पर कहा कि प्रेमचंद हिन्दी और उर्दू के साथ–साथ अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे। डॉ. गोयनका ने बताया कि प्रेमचंद अपनी कृतियों की रूपरेखा पहले अंग्रेजी में ही लिखते थे। उसके बाद उसका अनुवाद करते हुए हिन्दी या उर्दू में रचना पूरी कर देते थे। डॉ. गोयनका ने कहा कि प्रेमचंद ने अपनी महान कृति 'गोदान' की भी रूपरेखा पहले अंग्रेजी में लिखी थी जिसकी मूल प्रति यहाँ प्रदर्शनो में लगाई गई है। उनके एक अलिखित उपन्यास की रूपरेखा भी अंग्रेजी में लिखी हुई उन्हें मिली है। प्रेमचंद ने रंग भूमि और कायाकल्प उपन्यासों की रूपरेखा भी अंग्रेजी में लिखी थी। उनकी डायरी भी अंग्रेजी में लिखी हुई मिली है। वहीं, प्रदर्शनी में पंडित जवाहर लाल नेहरू के अपनी पुत्री को अंग्रेजी में लिखे गए पत्रों का अनुवाद हिन्दी में करने के आचार्य नरेन्द्र देव का प्रेमचंद को लिखा गया आग्रह पत्र भी रखा गया है। प्रेमचंद ने पं नेहरू के इन पत्रों को हिन्दी में रूपान्तरित किया था। दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे डॉ. गोयनका ने कहा कि वर्ष 1972 में प्रेमचंद पर पी. एच.डी. करने के बाद उन्होंने प्रेमचंद द्वारा रचित 1500 से अधिक पृष्ठों का अप्राप्य साहित्य खोजा। इसमें 30 नई कहानियाँ मिलीं। प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने प्रेमचन्द के कथा–साहित्य के भाषिक स्वरूप का विश्लेषण किया।ख।,

1.8 प्रेमचंद की रचनाएं

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, संपादकीय, संस्मरण आदि अनेक रूपों में साहित्य की रचना की। मुख्यरूप से उनकी ख्याति कथाकार के तौर पर हुई और अपने जीवन काल में ही वे 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से सम्मानित हुए। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से कुछ अधिक कहानियां, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल–पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की लेकिन उपन्यास और कहानी ने उन्हें सबसे ज्यादा पहचान दिलाई।

उन्होंने हिन्दी और उर्दू में पूरे अधिकार से लिखा। उनकी अधिकांश रचनाएं मूल रूप से उर्दू में लिखी गई हैं लेकिन उनका प्रकाशन हिन्दी में पहले हुआ। 33 वर्षों के रचनात्मक जीवन में वह साहित्य की ऐसी विरासत सौंप गए जो गुणों की दृष्टि से अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असीमित।

1.8.1 उपन्यास

प्रेमचंद के उपन्यास न केवल हिन्दी उपन्यास साहित्य में बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य में मील के पत्थर हैं। प्रेमचंद मूल रूप से उर्दु के लेखक थे और उर्दू से हिन्दी में आए थे। उन्होंने 'सेवासदन'(1918)उपन्यास से हिन्दी उपन्यास की दुनिया में प्रवेश किया। यह मूल रूप से उन्होंने

'बाजारे–हुस्न'नाम से पहले उर्दू में लिखा लेकिन इसका हिन्दी रूप 'सेवासदन' पहले प्रकाशित कराया। 'सेवासदन' एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है। इसके बाद किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम'(1921)आया। इसका मसौदा भी पहले उर्दू में 'गोशाए–आफियत' नाम से तैयार हुआ था, लेकिन 'सेवासदन' की भांति इसे पहले हिन्दी में प्रकाशित कराया। 'प्रेमाश्रम'किसान जीवन पर लिखा हिन्दी का संभवतः पहला उपन्यास है। यह अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया। इसके बाद 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932) से होता हुआ यह सफर गोदान' (1936) तक पूर्णता को प्राप्त हुआ। रंगभूमि में प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिन्दी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात कर चुके थे। गोदान का हिन्दी साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

1.8.2 कहानी

उपन्यासों के साथ प्रेमचंद की कहानियों का सिलसिला भी चलता रहा। प्रेमचंद ने मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन व मध्यवर्गीय जीवन पर कहानियां लिखी। उनकी पहली उर्दू कहानी'दुनिया का सबसे अनमोल रतन'कानपुर से प्रकाशित होने वाली'जमाना'नामक पत्रिका में 1908 में छपी।

प्रेमंचद के कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए–'सप्त सरोज', 'नवनिधि', 'प्रेम–पूर्णिमा', 'प्रेम–पचीसी', 'प्रेम–प्रतिमा', 'प्रेम–द्वादशी', 'समरयात्रा', 'मानसरोवर'– भाग एक व दो, और 'कफन'। प्रेमचंद की प्रमुख कहानियों में यह नाम लिये जा सकते हैं– 'पंच परमेश्वर', 'गुल्ली डंडा', 'दो बैलों की कथा', 'ईदगाह', 'बडे भाई साहब', 'पूस की रात', 'कफन', 'ठाकुर का कुंआ', 'सद्गति', 'बूढी काकी', 'तावान', 'विध्वंस', 'दूध का दाम', 'मंत्र' आदि।

1.8.3 नाटक

इसी के साथ प्रेमचंद ने 'संग्राम' (1923), 'कर्बला' (1924), और 'प्रेम की वेदी' (1933) नाटकों की रचना की। यह नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्छे हैं लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों ने इतनी ऊंचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचंद को कोई खास सफलता नहीं मिली।

प्रेमचंद एक संवेदनशील कथाकार ही नहीं, एक अनुवादक, सजग नागरिक व संपादक भी थे। उन्होंने 'हंस', 'माधुरी', 'जागरण' आदि पत्र–पत्रिकाओं का संपादन करते हुए व तत्कालीन अन्य सहगामी साहित्यिक पत्रिकाओं 'चांद', 'मर्यादा', 'स्वदेश' आदि में अपनी साहित्यिक व सामाजिक चिंताओं को लेखों या निबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

1.9 साहित्य में प्रेमचंद का योगदान

साहित्य में प्रेमचंद का योगदान अतुलनीय है। साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद का योगदान अतुलनीय है। उन्होंने कहानी और उपन्यास के माध्यम से लोगों को साहित्य से जोड़ने का काम किया, उनके द्वारा लिखे गए उपन्यास और कहानियां आज भी प्रासगिक हैं।

यह उद्‌गार पूर्व प्रधानाचार्य शिव कुमार गोस्वामी ने बुधवार को सरस्वती विद्या मंदिर इंटर कॉलेज में मुंशी प्रेमचंद जयंती पर आयोजित गोष्ठी में व्यक्त किए। मुंशी प्रेमचंद के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि मुंशी प्रेमचंद ने एसडीआई के पद पर रहते हुए जिले में पांच साल बिताए। उन्होंनगांवों में जाकर जो कुछ भी देखा, उसको अपनी कहानियों के माध्यम से सबसे सामने रखा, जो कि आज भी प्रासंगिक प्रतीत होता है।

1.10 उपसंहार

प्रेमचंद ने अपने जीवन के कई अदभूत कृतियां लिखी हैं। तब से लेकर आज तक हिन्दी साहित्य मे ना ही उनके जैसा कोई हुआ है और ना ही कोई और होगा। अपने जीवन के अंतिम दिनों के एक वर्ष को छोड़कर उनका पूरा समय वाराणसी और लखनऊ में गुजरा, जहां उन्होंने अनेक पत्र–पत्रिकाओं का संपादन किया और अपना साहित्य–सृजन करते रहे। 8 अक्टूबर, 1936 को जलादर रोग से उनका देहावसान हुआ।

जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था, सिवाय बांग्ला साहित्य के। उस समय बंकिम बाबू थे,शरतचंद्र थे और इसके अलावा टॉलस्टॉय जैसे रुसी साहित्यकार थे। इसलिए उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया। फिर उन्होंने गोदान जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है।

प्रेमचंद ने इस बात को समझा था कि सामाजिक स्वतंत्रता के बिना वास्तविक स्वतंत्रता मुमकिन नहीं होगी। राजनैतिक क्रांतिकारिता यदि सामाजिक क्रांतिकारिता के बगैर हो वह बहुत अर्थपूर्ण नहीं होती की बात को कांग्रेस की राजनीति से जुड़े गोखले, गांधी और नेहरू ने भी समझा था। कांग्रेस के भीतर तथाकथित नरम दल और गरम दल के भेद की बुनियाद सामाजिक प्रश्नों पर ही थी। विवाह वय विधेयक पर जब दोनों पक्ष बुरी तरह भिड़ गए, तब उनका सामाजिक चरित्र देश के समक्ष अधिक स्पष्ट हुआ। तिलक ने सामाजिक दकियानूसी ताकतों का साथ दिया था, बल्कि उनके प्रवक्ता बन गए थे। इसके साथ ही वह जुझारू राष्ट्रवाद की व्याख्या कर रहे थे। नरम दली ताकतें सामाजिक प्रश्नों को महत्वपूर्ण समझती थीं। उनका मानना था बिना सामाजिक परिवर्तन के राजनैतिक परिवर्तन संभव नहीं है। हिंदी क्षेत्र में मोतीलाल नेहरू ने इस प्रवृति को समझा और उन्होंने बेटे जवाहरलाल नेहरू को

दोनों प्रवृत्तियों के भेद को बतलाया। वह तिलकवाद के विरुद्ध खड़े हुए। गोखले और गाँधी के समर्थन में नेहरू द्वय का आना वैचारिक स्तर पर था। इस मिजाज से जुड़ने में हिंदी लेखकों को कठिनाई हुई। वह हिंदुत्व के सामाजिक सरोकारों के साथ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की बात करते थे।

लेकिन प्रेमचंद हिंदी की उपरोक्त मुख्य धारा से अलग दीखते हैं। सामाजिक प्रश्नों पर वह राष्ट्रीय नेताओं से भी अधिक सचेत –सतर्क हैं। सामाजिक –राजनैतिक गतिहीनता के वास्तविक कारणों की खोज वह प्रायः करते दीखते हैं। अपनी कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में वह समाज की राजनीतिक –विमुखता के कारणा को चिन्हित किया है। यह सामंतवाद था, नवाबी थी, जिसने हमें काहिली से भर दिया था। वास्तविक राजा पकड़ कर ले जाया जा रहा है और नवाब शतरंज के राजा की लड़ाई लड़ रहे हैं। सामाजिक स्थिति भी ऐसी ही थी। लोगों को राष्ट्र से अधिक अपने वर्णधर्म की चिंता थी। सामंतवाद और ब्राह्मणवाद प्रेमचंद के समय के दो बड़े प्रश्न थे, जिनके उन्मूलन के बिना सच्चे राष्ट्रवाद की बुनियाद नहीं रखी जा सकती थी। प्रेमचंद आधुनिक हिंदी के पहले लेखक थे जिन्होंने स्पष्टतया ब्राह्मणवादी पाखंड को बार –बार अपनी रचनाओं में चिन्हित करने की काशिश की है। हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था पर प्रश्न उठाने का साहस किसी हिंदी लेखक ने नहीं किया था। उन्होंने यह किया। उनपर मुकदमे दर्ज किये किये गए और कई तरह से उनकी अवमानना की गयी, लेकिन वह रुके नहीं। 'ठाकुर का कुआँ' कहानी उन्होंने उसी वर्ष लिखी, जिस वर्ष आंबेडकर के नेतृत्व में चौहद का जल सत्याग्रह चला।

संदर्भ सूची

1. आशा कुमारी (प्रेमचंद हिंदी साहित्य , मगध महिला कॉलेज)
2. गजेंद्र शर्मा (विचारधारा का अंत और प्रेमचंद की विचारधारा, जुलाई २०२१)
3. अदिती भारद्वाज (प्रेमचंद के विचारो को उनके जन्म के सौ साल बाद याद करने की जरूरत क्यो?)
4. प्रेम कुमार मतिग (प्रेमचंद का सामाजिक चिंतन) फरवरी २०२१
5. प्रेमचंद के साहित्य की विशेषताएं (from bharatdiscovery.org)
6. बायोग्राफी वि प्रेमचंद (भारतीय साहित्य में योगदान ंजतपबसम)
7. डॉ0 नागेन्द्रः हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर प्रका''ान, नोयेडा, गौतमबुद्धनगर।
8. डा0 सरोज सिंहः प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियाँ, लोकभारती प्रका''ान, प्रयागराज।
9. चन्दन राव कोठारी एवं गौरव गर्गः अनुसंधान विधि–न्यू एज इण्टरने''ानल (पी) लिमिटेड पब्लिके''ान दरियागंज, नई दिल्ली।
10. प्रेमचंद्र (2013) कुछ विचार, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन।

11. प्रेमचंद– कुछ विचार (साहित्य् और भाषा संबंधी कुछ विचार), प्रकाशक–सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, वर्तमान संस्करण– 1982, पृ0 सं0–18
12. प्रेमचंद– कुछ विचार (साहित्य् और भाषा संबंधी कुछ विचार), प्रकाशक–सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, वर्तमान संस्करण– 1982, पृ0 सं0–9
13. प्रेमचंद– कुछ विचार (साहित्य् और भाषा संबंधी कुछ विचार), प्रकाशक–सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, वर्तमान संस्करण– 1982, पृ0 सं0–17
14. प्रेमचंद के आलोचक और आलोचकों के प्रेमचंद, (internet source) https://theparivartan.co.in/
15. प्रेमचंद– कुछ विचार (साहित्य और भाषा संबंधी कुछ विचार), प्रकाशक–सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, वर्तमान संस्करण– 1982, पृ0 सं0–6